Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 15, Issue No. 7, September-2018, ISSN 2230-7540

समाजिक, शारीरिक एवं संवेगात्मक रूप से समाजयोजन का अध्ययन

Vijaya Yadav[1]* Dr. Siyaram Yadav[2]

[1] Research Scholar, Swami Vivekanand University, Sagar, MP

[2] Professor, Education Department, Swami Vivekanand University, Sagar, MP

सांराश – *प्रत्येक व्यक्ति की कुछ न कुछ इच्छाऐं, आवश्यकताऐं तथा आकांक्षाऐं होती है। वह इन्हीं को प्राप्त अथवा पूर्ण करने का निरन्तर प्रयास करता है। किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि वह सदैव ही इन आवश्यकताओं तथा इच्छाओं को पूरा कर ही लें। कुछ व्यक्ति अपनी इन इच्छाओं व आवश्यकताओं के साथ सामंजस्य स्थापित कर लेते है और इस प्रकार वे अपने आप को समायोजित कर लेते है। लेकिन जो व्यक्ति ऐसा नहीं कर पाते उनमें भग्नाशा, तनाव, द्वन्द, चिन्ता, शंका आदि मनोवेग उत्पन्न हो जाते है। अर्थात् समायोजन का सामान्य अर्थ यह है कि यदि कोई व्यक्ति अपनी आवश्यकता एवं उससे सम्बन्धित परिस्थिति के साथ सामन्जस्य स्थापित कर लेता है तो वह समायोजित है। यह सामंजस्य समाज द्वारा मान्य मान्यताओं के अनुरूप होता है। इस शोधपत्र में हम समाजिक, शारीरिक एवं संवेगात्मक रूप से समाजयोजन का अध्धयन करेंगे।*

----------X----------

1. प्रस्तावना

समायोजन एक प्रक्रिया है, एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा सुखी एवं संतोषप्रद जीवन यापन की राह पकडी जा सकती है। समायोजन हमें मनोवैज्ञानिक रूप से अच्छी तरह जीवन यापन करने के लिए उसी तरह आवश्यकत है जैसे बदलते मौसम या परिस्थितियों में शरीर को जिन्दा रखने के लिए वस्त्रों, खान-पान, रहन-सहन में परिवर्तन लाकर अनुकूल करने की प्रक्रिया। समाजयोजन से हमें अपनी ईच्छाओं, आवश्यकताओं तथा इन आवश्यकताओं को पूरा करने सम्बन्धी अपनी योग्यताओं तथा क्षमताओं में संतुलन बनाये रखने में मदद मिलती है। अगर हमारे पास ज्यादा क्षमता और योग्यता होती है, हम अपनी आवश्यकता की सीमा बढाते जाते है और अगर कम होती है तो हम अपने लक्ष्य की उचाई या आवश्यकताओं की सीमा में कमी कर देते है। समायोजन के द्वारा एक ओर तो हम अपने आप को बदलती परिस्थितियों के अनुसार बदलने का प्रयत्न करते है तो दूसरी ओर समायोजन हमें ऐसी शक्ति एवं सामथ्र्य भी देता है कि हम परिस्थितियों को ही बदल डालें। बात संतुलन की होती है और यह संतुलन हमारे और हमारी परिस्थितियों के बीच बनाना होता है अतः इसके लिए जहां अपने को बदल को संतुलन बनाया जा सकता है वही ऐसा साहस भी किया जा सकता है कि परिस्थितियों को ही बदल कर अपने अनुकूल कर लिया जाय। समायोजन का यह मार्ग महापुरूषों, साहसी तथा निडर व्यक्तियों तथा इतिहास रचने वाले व्यक्तियों द्वारा चुना जाता है। एक भलीभाँति समायोजित कहे जाने बालक के व्यक्तित्व व व्यवहार में निम्न विशेषताएं पायी जाती है। अपनी अच्छाइयों तथा कमजोरियों का ज्ञान - भलिभांति समायोजित बालक यह जानता है कि उसकी अपनी योग्यताओं तथा क्षमताओं का क्या स्तर, किन बातों में वह आगे है तथा किनमें पीछे। अपने आपको इस प्रकार तोलकर ही वह आगे बढ़ता है और इसीलिये न तो वह जो नहीं कर सकता था उसे करके निराश होता है और न जो वह कर सकता था उसे न करके पछताता रहता है।

2. घर और विद्यालय में बालक का समायोजन

बालक का अधिकांश समय अपने घर पर तथा विद्यालय में ही बीतता है। यहीं उसकी भौतिक, सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएं पूरी होती है तथा उसे अपने वृद्धि और विकास के लिये उचित पोषक तत्व प्राप्त होते है। जिस सीमा तक यह सब कुछ उसे प्राप्त होता है तथा वह इनकी

www.ignited.in

प्राप्ति से संतुष्टि अनुभव करता है उसी सीमा तक उसे समायोजित कहा जा सकता है। जहां उसकी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति में बाधायें आती है या ऐसा होने की आशंका उस पर मंडराती रहती है। अथवा वह किसी कारण से अपने आप से तथा अपने वातावरण से असंतुष्ट रहता है तो उसे उसका कुसमायोजन का दौर शुरू हो जाता है जिसकी परिणिति या तो मानसिक अस्वस्थता में होती है अथवा वह परिस्थितियों के प्रति विद्रोही बनकर समस्यात्मक बालक बन जाता है। इस संदर्भ में यहां यह प्रश्न उठता है कि घर और विद्यालय के वातावरण में ऐसे कौन से तत्त्व या परिस्थितियां है जो बालकों की समायोजन प्रक्रिया को समारात्मक या नकारात्मक दिशा में ले जाने के लिये उत्तरदायी होती है।

शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षण अधिगम प्रकिया का महत्वपूर्ण तत्व है। शिक्षण अध्यापक का प्रमुख कार्य होता है। शिक्षण के कार्य मे अधिगम सफल शिक्षा पद्धति का मुख्य तत्व है। जबकी अधिगम एक सामान्य प्रचलित प्रक्रिया है। मनुष्य जन्म लेने से लेकर मृत्यु तक कुछ न कुछ सीखता ही रहता है। जैसे किसी गरम या जलती हुई वस्तु से छू लेनें पर बच्चा यह सीख जाता है कि उसे छूने पर हाथ जलता है। इस पक्रार प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रुप से व्यक्ति के व्यवहार मे अधिगम होते रहते है। कई परिस्थितियों में दूसरों के अनुभवों से भी शिक्षा की प्राप्ति होती है। इस प्रकार प्रतिभा सम्पन्न बालकों के समुचित विकास के लिए माता-पिता, परिवार, समाज, स्कलू, शिक्षक, सरकार सभी को सम्मिलित होकर प्रयास करना चाहिए ताकि ऐसे बालकों के छिपे हुए गुण निखरकर सामने आएं। साथ ही बालकों की प्रतिभा का लाभ समाज तथा देश को मिल सके, जिससे देश समावेशी विकास के सर्वोच्च शिखर पर आसीन हो सके। इस प्रकार के विकास के लिए हमारी शिक्षा नीतियों में परिस्थिति अनुसार तकनीकों को प्रयोग करने की सुविधा पद्रान कर छात्रों के उपलब्धि स्तर में विशिष्टता प्राप्त कर सकते हैं व सामाजिक ढाँचे के अनुसार उनका विकास व जीवन स्तर में वृद्धि कर सकते हैं।

शिक्षण ऐसी अन्तः सक्रिय प्रक्रिया या व्यवस्था है जो मुख्यतः कक्षा मे अध्यापक एवं विधार्थियों मे सुनिश्चित क्रियाओं के वार्तालाप के दौरान घटित होती है। शिक्षण प्रक्रिया मे सीखना या अधिगम ही केन्द्र होता है। इस प्रक्रिया में और शिक्षा जगत की पूरी की पूरी व्यवस्था मे पाठ्यक्रम, अधिगम, अधिगमकर्ता और शिक्षणकर्ता का ही बोलबाला रहता है। एक तरह से जो कुछ भी हम शिक्षा और शिक्षण अधिगम प्रक्रिया द्वारा चाहते और करते हैं वह सब अधिगमकर्ता के हित मे ही होता है। इस दृष्टि से भावी अध्यापक होने के नाते अधिगम की अवधारणा से परिचित होना अतिआवश्यक है।

ज्ञान रुपयों की भांति एक मनुष्य से दूसरे मनष्ुय को नहीं दिया जा सकता है। जब तक स्वयं बालक उस ज्ञान को ग्रहण करने के लिए तैयार नहीं हो। दूसरे शब्दों में बिना सिखाए शिक्षण नहीं हो सकता। अतः शिक्षण का सबसे महत्वपूर्ण कार्य सिखाना है और शिक्षण में गुणवत्ता तभी आ सकती है जब अधिगमकर्ता में जिज्ञासा के साथ अधिकतम ध्यानाकर्षण की विधियों का प्रयागे हो और ये सब तकनकीकों द्वारा ही सम्भव है जिसमें कम समय में अधिकतम परिणाम प्राप्त किये जा सकते हैं। तकनीक से तात्पर्य है कि व्यवहारिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए ज्ञान का दैनिक जीवन में उपयागे करना। शिक्षाका सीधा सम्बन्ध तकनीक तथा व्यवहारिक विज्ञान से है, जो शिक्षण तथा अधिगम तक पहुँच रखता है। इसमें समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, भाषा तथा विविध सम्बन्धित क्षेत्र शामिल है। शैक्षिक तकनीक मे सिर्फ मशीनें ही सम्मिलित नहीं है इसमें अधिगम क्षेत्र मे प्रयोग की जाने वाली प्रणालियाँ, तकनीकी तथा अन्य सामग्रियों का प्रयागे से है। शिक्षा के क्षेत्र में मूल्यांकन की विधियों को भी सम्मिलित किया जाता है।

3. समाजिक, शारीरिक एवं संवेगात्मक रूप से समाजयोजन

शारीरिक दृष्टि से समायोजित -शारीरिक रूप से बालक अगर स्वस्थ हो तथा उसका शारीरिक विकास, भार, ऊंचाई, अंगप्रत्यंगों का विकास आदि अपनी आयु के मुताबिक सामान्य ढंग से चलता रहे तो उसे अपने आप से तथा अपने वातावरण के साथ समायोजन करने में बहुत सुविधा होती है समायोजित कहे जाने वाले बालक में शारीरिक स्वस्थ्य एवं विकास सम्बन्धी यह विशेषता पाई जाती है।

संवेगात्मक रूप से समायोजित - एक समायेजित बालक का संवेगात्मक व्यवहार काफी संतुलित होता है। वह अपने संवेगों की उचित अभिव्यक्ति का उचित ढंग सीख लेता है। किस तरह कितनी मात्रा में किस प्रकार के संवेगों की अभिव्यक्ति की जाय, इस प्रकार की व्यवहार कुशलता तथा संवेगात्मक नियन्त्रण की उसमें उपस्थिति पाई जाती है। अपने आपको पर्याप्त सम्मान देना तथा दूसरों का भी सम्मान करना -भलीभांति समायोजित बालक जो कुछ भी अपने व्यक्तित्व में होता है उससे सन्तुष्ट रहने का प्रयत्न करता है तथा अपने आत्म (Self) का पर्याप्त सम्मान करता है। जैसा भी रंगरूप, कद काठी, योग्यताएं तथा क्षमताएं उसके पास होती हैं उन्हीं को अपनी शक्ति मान कर उनकी कद्र करता है तथा जो कुछ नहीं है उसकी दूसरों से तुलना कर व्यर्थ में रोना नहीं रोता और न इसके लिये अकारण ही

www.ignited.in

परेशान होता है। अपने आत्म का सम्मान करते हुए दूसरों को पर्याप्त सम्मान देने का प्रयत्न करता रहता है और किसी तरह भी भावनाओं को वह अकारण ही चोट नहीं पहुंचाता।

सामाजिक रूप से समायोजित -एक भलिभांति समायोजित बालक समाजिक विकास तथा समाजिकता की दृष्टि से अपनी आयु के मुताबिक ठीक प्रगति करता हुआ पाया जाता है। दूसरों बच्चों के साथ खेलने, मित्रता बढ़ाने तथा समाजिक क्रियाओं में भाग लेने में उसकी रूचि होती है। धीरे-धीरे वह समाज के प्रति अपने कत्तव्यों को समझने लगता है। अपने समाजिक परिवेश को अच्छी तरह पहिचानने की उसमें क्षमता आ जाती है तथा अच्छा सामाजिक जीवन बिताने से सम्बन्धित गुणों और कुशलताओं के अर्जन की ओर वह कदम बढ़ाने लगता है।

मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति -मूलभूत शारीरिक मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक आवश्यकतओं की पूर्ति किसी भी व्यक्ति के समायोजन के लिये काफी आवश्यक मानी जाती है। अगर किसी कारण किसी आवश्यकता की पूर्ति में कोई कमी रहती भी है तो उसकी चुभन को दूसरे वर्ग की आवश्यकताओं की पूर्ति से पूरा किया जाता रहता है। गरीबी तथा अभावों की चुभन को स्नेह, तथा प्यार के मरहम तथा सुरक्षा के कवच से कम किया जा सकता है। भलीभांति समायोजित बालक के साथ यही होता है। या तो उसकी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति में कोई बाधा नहीं आती और अगर आती भी है तो उसकी उन्हें भविष्य में पूरा होने की आशा बंधी रहती है।

अपने वातावरण सम्बन्धी हालातों से संतुष्टि-अपने घर, परिवार, पास-पड़ोस, विद्यालय में उसे जो भी परिस्थितियां और माहौल, उसके रहन-सहन, लालन-पालन, खेल-कूद, मनोरंजन तथा शिक्षा के लिये मिलता है उसमें वह संतुष्टि का अनुभव करता है तथा बिना वजह किसी अभाव का रोना नहीं रोते रहता। जो भी काम वह जहां भी करता है और जिनके सम्पर्क में आता है उससे उसे कोई भी शिकायत या गिले शिकवे करते नहीं पाया जाता।

हालातों से संघर्ष करने की क्षमता - अनुकूल परिस्थितियों में तो सभी जी लेते हैं और सन्तुष्टि का अनुभव कर लेते हैं। परीक्षा तो विपरीत परिस्थितियों में ही होती है। इस प्रकार की परिस्थितियों में समझौता करने के लिए पर्याप्त धैर्य रखने के साथ-साथ समायोजित बालक में यह भी विशेषता पाई जाती है कि वह हालातों का मुकाबला कर उन्हें अपने अनुकूल बना डालने के लिये भी कमर कस कर खड़ा हो जाये। उसकी संकल्प तथा इच्छा शक्ति प्रबल होती है अतः वह प्रतिकूल परिस्थितियों में भी विचलित नहीं होता।

4. निष्कर्ष

शिक्षा शास्त्र के अनुसंधान मे शिक्षण, अनुदेशन तथा प्रशिक्षण का मुख्य ज्ञान देना चाहिए, परन्तु अधिगम को अधिक महत्व दिया गया है। अधिगम की अपेक्षा शिक्षण का प्रत्यय अधिक जटिल होता है। शिक्षण में ऐसी परिस्थितियों को उत्पन्न किया जाता है, जिसमें कुछ रिक्त स्थान छाडे दिये जाते हैं तथा कठिनाइयाँ उत्पन्न की जाति हैं छात्र उन कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करने का प्रयास करता है तथा रिक्त स्थानों की पूर्ति करने का प्रयास करता है। छात्रों के लिए इस प्रकार की प्रक्रियाएं सीखने में सहायक होती है। शिक्षण छात्रों को नया ज्ञान प्रदान करने के लिए किया जाता है। इसके साथ ही छात्रों के निदान के आधार पर उपचारात्मक शिक्षण भी किया जाता है। शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षण अधिगम प्रकिया का महत्वपूर्ण तत्व है। शिक्षण अध्यापक का प्रमुख कार्य होता है। शिक्षण के कार्य मे अधिगम सफल शिक्षा पद्धति का मुख्य तत्व है। जबकी अधिगम एक सामान्य प्रचलित प्रक्रिया है। मनुष्य जन्म लेने से लेकर मृत्यु तक कुछ न कुछ सीखता ही रहता है। जैसे किसी गरम या जलती हुई वस्तु से छू लेनें पर बच्चा यह सीख जाता है कि उसे छूने पर हाथ जलता है। इस पक्रार प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रुप से व्यक्ति के व्यवहार मे अधिगम होते रहते है। कई परिस्थितियों में दूसरों के अनुभवों से भी शिक्षा की प्राप्ति होती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. कपिल एच..के. (2010), सांख्यिकी के मूल तत्व, एच.पी.भार्गव बुक हाउस, आगरा संस्करण्ज्ञं

2. बर्णवाल सुमित कुमार, पाण्डे योगेश, चौधरी रंजिता, खान शगुफता,- शिक्षा शास्त्र, अरिहन्त पब्लिकेशन्स लिमिटेड, आई.. एस.. बी.. एनं.- 978-93-5094-923-8।

3. मंगल डॉ. एस.के. (2002), शैक्षिक तकनीक, टण्डन पब्लिकेशन्स, बुक मार्केट लुधियाना।

4. मंगल डॉ. एस..के.. (प्रथम संस्करण), शिक्षण एवं अधिगम का मनोविज्ञान, टण्डन पब्लिकेशन्स, बुक मार्केट, लुधियाना, 141008। फोन-729622, 723574

5. सिहं राजेन्द्रपाल, चौधरी जगदीश (2012), शिक्षा में अनुसंधान, बालाजी पब्लिकेशन्स डी-9,फरीदाबाद, हरियाणा।

6. रैना रीता, भार्गव राखी,- (2006), शैक्षिक मापन एवं सांख्यिकी,- राखी प्रकाशन,

7. शकुन्तला डॉ. दलाल, डॉ. डी. सी., सी.एल., जैन, एस.बी. (2008), आधुनिक भारतीय समाज मे शिक्षा, विजय पब्लिकेशन्स 546, बुक्स मार्केट, 9814067258।

8. सिहं राजेन्द्रपाल, चौधरी जगदीश (2012), शिक्षा में अनुसंधान, बालाजी पब्लिकेशन्स डी-9, फरीदाबाद, हरियाणा।

9. रैना रीता, भार्गव राखी,- (2006), शैक्षिक मापन एवं सांख्यिकी,- राखी प्रकाशन,

10. शकुन्तला डॉ. दलाल, डॉ. डी. सी., सी.एल., जैन, एस.बी. (2008), आधुनिक भारतीय समाज मे शिक्षा, विजय पब्लिकेशन्स 546, बुक्स मार्केट, 9814067258।

Corresponding Author

Vijaya Yadav*

Research Scholar, Swami Vivekanand University, Sagar, MP